ओ३म्

वैदिक संस्कृति का उद्घोषक

वैदिक सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली का साप्ताहिक मुख-पत्र

शुल्क :- एक प्रति 5 रुपया (भारत में) वार्षिक 250 रुपये तथा आजीवन 2500 रुपये

वर्ष 15 अंक 16 कुल पृष्ठ-4 22 से 28 अक्टूबर, 2020 दयानन्दाब्द 197 सृष्टि सम्वत् 1960853121 सम्वत् 2077 आ. कृ.-08

महर्षि दयानंद दर्शक दीर्घा हापुड़ की प्रथम वर्ष गांठ समारोह पूर्वक मनाई गई

देश की युवा पीढ़ी को महर्षि दयानन्द के जीवन एवं विचारधारा से परिचित कराना समय की महती आवश्यकता

– स्वामी आर्यवेश

बढ़ता पाखण्ड–अंधविश्वास समाज के लिए घातक

–अनिल आर्य

हापुड़, रविवार 18 अक्टूबर 2020, आर्य समाज हापुड़ में गत वर्ष स्थापित 'महर्षि दयानंद चित्र दीर्घा' जिसका उद्घाटन सिक्किम के महामहिम राज्यपाल श्री गंगाप्रसाद जी ने किया था और सभा प्रधान स्वामी आर्यवेश जी ने उस समारोह की अध्यक्षता की थी, जिसकी प्रथम वर्ष गांठ पर आर्य समाज हापुड़ के तत्वावधान में ऑनलाइन गूगल मीट पर समारोह का आयोजन किया गया।

समारोह में मुख्य वक्ता के रूप में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी ने कहा कि उदयपुर के बाद इस प्रकार की चित्र दीर्घा का निर्माण हापुड़ आर्य समाज ने किया है जो कि अत्यंत सराहनीय है। इस चित्र दीर्घा से नए लोग प्रेरणा ग्रहण करेंगे। स्वामी जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द के बताए रास्ते पर चलकर ही समाज का कल्याण हो सकता है। महर्षि दयानंद युग द्रष्टा थे उन्होंने समाज में आमूल चूल परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने वेद के आधार पर समाज निर्माण के लिए वैचारिक क्रांति को जन्म दिया जिसे जन–जन तक पहुंचाने की आवश्यकता है। इस चित्र दीर्घा के माध्यम से छात्र–छात्राओं एवं नवयुवकों को अधिक से अधिक जोड़ा जाये ताकि वे महर्षि दयानन्द जी की विचारधारा, उनके जीवनवृत्त एवं आर्य समाज से परिचित हो सकें। आज समय की माँग है कि युवाओं को महर्षि दयानन्द की विचारधारा से परिचित कराने के लिए अथवा जोड़ने के लिए पूरे देश एवं विदेश में आर्य समाज को युद्ध स्तर पर प्रचार कार्य करना चाहिए। आर्य समाज हापुड़ इस दिशा में सक्रिय है, यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। महर्षि दयानन्द जी ने समाज में फैली हुई जातिवाद, साम्प्रदायिकता, नशाखोरी, महिला उत्पीड़न, धार्मिक अन्धविश्वास एवं आर्थिक शोषण के विरुद्ध क्रांतिकारी विचारधारा का सूत्रपात किया था जिसकी वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि उपरोक्त ज्वलन्त समस्याओं से पूरा विश्व और विशेष कर भारत अत्यन्त प्रभावित हो रहा है और समाज का निरन्तर पतन होता जा रहा है। वर्तमान समय में वैदिक संस्कृति के तीन आधार स्तम्भ यज्ञ, योग और आयुर्वेद हैं इन तीन की रक्षा से पर्यावरण व मानव मात्र ठीक रहेगा, इस विचार को हमें पूरे विश्व में मानव मात्र के कल्याण की भावना से प्रचारित एवं प्रसारित करना चाहिए।

इस अवसर पर कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे केन्द्रीय आर्य युवक परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष अनिल आर्य जी ने कहा कि आज समाज में बढ़ता पाखण्ड, अंधविश्वास चिन्ता का विषय है, पढ़े लिखे लोग भी इसमें फंस जाते है। बड़े–बड़े राजनेता हों या उद्योगपति कहीं न कहीं इसके जाल में फंसे दिखाई देते हैं प्रतिष्ठित व्यक्तियों को देखकर आम व्यक्ति भी बहक जाता है। ये दर्शक दीर्घा जीवन को सही मार्ग पर चलने में सहायता करेगी। आर्य समाज के प्रत्येक कार्यकर्ता को अब जनजागरण का कार्य करना है।

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर के कार्यकारी प्रधान श्री अशोक आर्य ने मुख्यअतिथि के रूप में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि महर्षि दयानंद जी ने उदयपुर के नवलखा महल में बैठकर सत्यार्थ प्रकाश की रचना एवं लेखन का कार्य पूर्ण किया था। सत्यार्थ प्रकाश न्यास ने नवलखा महल में महर्षि दयानन्द जी की चित्र दीर्घा का निर्माण कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया जिससे उदयपुर आने वाले लाखों पर्यटकों को महर्षि दयानन्द चित्र दीर्घा देखने का अवसर मिलता है और वे उनके जीवन से प्रभावित होते हैं। उसी के अनुरुप आर्य समाज हापुड़ ने महर्षि दयानंद चित्र दीर्घा का निर्माण कर प्रशंसनीय कार्य किया है, इस अनुकरणीय कार्य पर उन्होंने प्रसन्नता जाहिर की और कहा यह आर्यावर्त के प्रदर्शन की दीर्घा है। मैं आर्य समाज हापुड़ के सभी पदाधिकारियों का आभार प्रदर्शित करता हूँ कि उन्होंने चित्र दीर्घा की प्रथम वर्षगांठ में मुझे भी सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया।

इस अवसर पर गायिका संगीता आर्या, पुष्पा चुघ व आचार्य धर्मेन्द्र शास्त्री ने ईश भक्ति के गीतों से समा बांध दिया।

कुशल संचालन करते हुए आर्य नेता आनन्द प्रकाश आर्य ने कहा कि उत्तर भारत में यह दर्शक दीर्घा आकर्षण का केंद्र बनती जा रही है जो कि महर्षि दयानन्द जी के विचारों को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी।

इस अवसर पर प्रधान नरेंद्र कुमार आर्य, मंत्री अनुपम आर्य, प्रान्तीय महामंत्री प्रवीण आर्य, विश्व बंधु आर्य, ओम प्रकाश आर्य, सत्यपाल आर्य, रमाकांत सारस्वत, सौरभ गुप्ता, राधारमण आर्य, मंगलसेन गुप्ता, सुरेश सिंघल, संजय शर्मा, सुरजीत सिंह, रामपाल आर्य,युवती परिषद् की अध्यक्षा उर्मिल आर्या, मंत्री डॉ सुषमा आर्या, रजनी गोयल आदि उपस्थित थे।

सम्पादक - प्रो. विट्ठलराव आर्य

शौर्य, पराक्रम और क्षात्रधर्म का पर्व : विजय दशमी

- डॉ. भवानीलाल भारतीय

आर्यों के प्रमुख पर्वों में आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि विजयदशमी के नाम से जानी जाती है। यह एक वैदिक पर्व है जो आर्य जाति के शौर्य, तेज, बल तथा क्षात्रवृत्ति का परिचायक है। अज्ञानवश इसे राम द्वारा लंकाधिपति रावण को युद्ध में पराजित करने का दिवस मान लिया है। वस्तुतः इस पर्व का राम की लंका विजय से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो भगवान् राम के आविर्भाव से पहले से चला आ रहा क्षात्रधर्म का प्रतीक पर्व है। वैदिक धर्म में ब्रह्म शक्ति और क्षत्र शक्ति के समन्वित विकास की बात कही गई है। यजुर्वेद में कहा गया है -

यत्र ब्रह्मं च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सहः।

जहां ब्रह्म और क्षत्र विद्वता और पराक्रम का समुचित समन्वय रहता है वहां पुण्य, प्रज्ञा तथा अग्नि तुल्य तेज और ओज रहता है। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार लंका पर राम की विजय चैत्र मास में हुई थी अतः आश्विन मास की दशमी का लंका विजय से कोई सम्बन्ध नहीं है। विजयदशमी तक वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है। प्राचीन काल में लगभग तीन चार मास तक निरन्तर वर्षा होती रहती थी। वीरों की विजय यात्राएं बंद हो गईं। अब बरसात के समाप्त होने पर रास्ते खुल गए। सेनाओं के आने जाने की कठिनाई दूर हो गई। इस ऋतु परिवर्तन का लाभ उठाकर प्राचीन काल में क्षत्रिय इस दिन अपने शस्त्रास्त्रों की सफाई करते थे। उन्हें पुनः काम में लाने लायक बनाते थे तथा राजाज्ञा से शस्त्रों की प्रदर्शनी लगाई जाती थी। वीर लोगों को अपनी अस्त्र शस्त्र विद्या के सार्वजनिक प्रदर्शन का अवसर मिलता है। आम जनता भी इन वीरों की शस्त्र विद्या तथा शौर्य प्रदर्शन को देखने के लिए बड़ी संख्या में एकत्रित होती थी। महाभारत में यह प्रसंग विस्तार से आता है जहां यह उल्लिखित हुआ है कि पितामह भीष्म के आदेश से आचार्य द्रोण ने अपने शिष्यों (कौरव एवं पाण्डव) को शस्त्रास्त्र कौशल को दिखाने के लिए एकत्र किया था। यह प्रदर्शन सार्वजनिक था।

भारत के इतिहास तथा परम्परा में क्षात्रवृत्ति का अनुसरण करने वाले वीरों की गौरव गाथा का विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है। त्रेतायुग के दशरथ पुत्र वीरों का उल्लेख हमें स्मरण दिलाता है कि अत्याचार, अनाचार तथा आसुरी वत्तियों को पराजित करने के लिए राम ने कितना पुरुषार्थ किया था। उनका वन गमन इसी उद्देश्य से हुआ था। मानसकार ने राम के मुख से कहलाया है -

निशिचरहीन करौ मही भुज उठाय प्रण कीन।

राम ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की - मैं इस धरती को असुरों से रहित कर दूंगा। द्वापर में भगवान श्री कृष्ण तथा पाण्डवों के पराक्रम और पौरुष की गाथा भगवान् श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास ने अपने अमरग्रन्थ महाभारत में विस्तार से गाई है। यहाँ श्री कृष्ण को वेद वेदांग का ज्ञाता तो कहा ही है, भीष्म के शब्दों में वे बल में भी तत्कालीन सब वीरों में अग्रगण्य हैं। (द्रष्टव्य महाभारत सभा पर्व में पितामह का कथन)

वेद वेदांग विज्ञान बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके कोऽन्योस्ति विशिष्टः केशवाहते।।

मनुष्य लोक में सुदर्शन चक्रधारी श्री कृष्ण से बढ़कर कोई बलशाली तथा शास्त्रज्ञ नहीं हुआ। जहां तक अर्जुन का सम्बन्ध है उसकी तो दो प्रतिज्ञाएं सर्वविदित हैं -

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।

अर्जुन ने युद्ध में न तो दीनता दिखलाई और न कभी पलायन किया। गाण्डीवधारी पार्थ तथा गदाधारी भीम अपने युग के महावीर थे। आर्य धर्म में शस्त्र और शास्त्र को तुल्य महत्व मिला था। यहां यह स्वीकार किया गया था कि शस्त्र के द्वारा रक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र का चिन्तन सम्भव होता है -

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चिन्ता प्रवर्त्तते।

भारतीय इतिहास में परशुराम शस्त्र और शास्त्र दोनों में सफल बताए गए हैं। उनके एक हाथ में शस्त्र है तो दूसरे में शास्त्र है। बाण (शर) क्षात्रधर्म का प्रतीक है तो शास्त्र ब्राह्मर्ण धर्म का प्रतीक है। परशुराम के शब्दों में - इदं ब्रह्मं इदं क्षत्रं शापादऽपि शरादऽपि।

मैं शत्रु से लोहा लेने के लिए हर तरह से तैयार हूँ। यदि वे युद्ध करना चाहते हैं तो मेरा परशु (फरसा) तैयार है और यदि वे ब्राह्मण के शाप को ग्रहण करने की शक्ति रखते हैं तो वह भी तैयार है।

वीरों की यह परम्परा अद्यपर्यन्त चली आई है। सम्राट चन्द्रगुप्त की वीरता को बल मिला विष्णुगुप्त चाणक्य की नीति तथा शास्त्रज्ञता से। मध्यकाल के वीरों में महाराणा प्रताप, मराठा वीर शिवाजी तथा दशम गुरु गोविन्द सिंह की वीरत्रयी का उल्लेख आवश्यक है। महाराणा ने तो (मेवाड़) उदयपुर की स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान किया। स्त्री और सन्तान सहित वर्षों तक वनों में भटकते रहे। अन्ततः उन्होंने अपनी प्रजा के हित को सर्वोपरि रखा और मुगल बादशाह की सत्ता को अस्वीकार किया। उदयपुर के राजचिन्ह के साथ क्षात्र धर्म का आदर्श सदा अंकित रहा।

क्षत्रियस्य परमोधर्मः प्रजानामेव पालनम्।
प्रजा का पालन ही क्षत्रिय का परम धर्म है।

राजस्थान के अन्य राज्यों में भी वीरता के आदर्श को ही स्वीकार किया था। जोधपुर के राठौड़ राजाओं के लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है-

रणवका राठौड़ - राठौड़ क्षत्रिय युद्ध में बांके सिद्ध हुए हैं।

शिवाजी के पराक्रम कूटनीति तथा शस्त्र कौशल का लोहा तो मुगल बादशाह औरंगजेब को भी स्वीकार करना पड़ा था। शिवाजी ने हिन्दू धर्म, संस्कृति और मानवता के मूल्यों की रक्षा के लिए आजीवन संघर्ष किया। महाकवि भूषण का यह कथन शतप्रतिशत सत्य है - शिवाजी न होतो तो सुनत होती सबकी।

उधर पंजाब के सिख गुरु गोविन्द सिंह ने अपने शिष्यों में वीर भावना जगाई। उनका कहना था कि अब तक हिन्दू चिड़िया की भांति सीधे साधे थे, अत्याचारों का मुकाबला करने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। गुरु महाराज की प्रतिज्ञा थी, मैं चिड़ियों को बाज बनाऊँगा अर्थात् बाज जैसे शक्तिशाली पक्षी की भांति शत्रु पर टूट पड़ने का साहस उनमें पैदा करूँगा। वस्तुतः सिख मत में जो क्षात्र भावना जगी उसका प्रयोग हिन्दू धर्म की आततायियों से रक्षा करना था। नवम गुरु तेजबहादुर के बारे में कहा गया है - गुरु महाराज ने हिन्दू धर्म के प्रतीक यज्ञोपवीत, शिखा तथा तिलक की रक्षा की। सचमुच उन्होंने कलियुग में वीरता, त्याग और बलिदान का अपूर्व आदर्श प्रस्तुत किया। विजयदशमी से हमें यही प्रेरणा लेनी है। स्वाधीनता सेनानी बलिदानी लोगों ने क्षात्र धर्म के प्रतीक बसन्ती चोले को पहना और देश के लिए आत्म बलिदान किया था। अहिंसा के साथ-साथ दुष्टों के दमन के लिए शस्त्रों का प्रयोग सर्वथा वांछनीय है। परमात्मा भी बलशाली है, अतः उससे हम बल की ही प्रार्थना करते हैं -

बलमसि बलमयि धेहि। हे परमात्मन् आप बल के भण्डार हैं, हम में बल को धारण कराएं।

- 3/5 शंकर कालोनी, श्री गंगानगर (राज.)

पारिवारिक व्रत एवं आचरण

– पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

ओ३म् अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥ अथर्ववेद 3.30.2॥

अन्वय – पुत्रः पितुः अनुव्रतः भवतु। पुत्रः माता सह संमनाः भवतु। जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाचं वदतु॥

अर्थ – (पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता का (अनुव्रतः) अनुव्रत हो अर्थात् उसके व्रतों को पूर्ण करे। पुत्र (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) उत्तम मनवाला (भवतु) हो अर्थात् माता के मन को संतुष्ट करने वाला हो। (जाया) पत्नी को चाहिए कि वह (पत्ये) पति के साथ (माधुमतीम्) मीठी और (शान्तिवाम्) शान्तिप्रद (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

व्याख्या – इस वेदमंत्र में वे आरम्भिक साधन बताये हैं जिनसे गृहस्थ सुव्यवस्थित रह सकता है।

ऊपरी दृष्टि से ऐसा लगता है कि जिन बातों का इस मन्त्र में प्रतिपादन है वे अतिसाधारण और चालू हैं। उनको असभ्य और अशिक्षित लोग भी समझते हैं। उनके लिए वेदमंत्र की आवश्यकता नहीं। परन्तु गम्भीर दृष्टि से पता चलेगा कि बहुत सी बातें विचारणीय और ज्ञातव्य हैं। उदाहरण के लिए दो शब्दों पर विचार कीजिए – एक 'पुत्र' और दूसरा 'अनुव्रत'। यहाँ केवल इतनी ही बात नहीं है कि सन्तानों को माँ-बाप की सेवा करनी चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यद्यपि जिस किसी ने संसार में सबसे पहले लोगों को यह उपदेश किया होगा, उस समय इतनी छोटी-सी बात भी बहुत बड़ी और अद्भुत मालूम होती होगी। आज भी यद्यपि कथन मात्र से इस बात को सभी जानते हैं, फिर भी व्यवहार में तो अत्यन्त न्यूनता दिखाई देती है। आज्ञाकारी राम तो कथाओं का ही विषय हैं। व्यवहार में तो जिन घरों में हिरण्यकश्यप नहीं हैं वहाँ भी किसी न किसी बहाने से सन्तान प्रह्लाद का स्वांग खेलने के लिए उत्सुक रहती है। कुछ ऐसे भी मनचले हैं जो ऐसी शिक्षाओं को असामयिक और प्राचीनकाल की दास-प्रथा का प्रतीक समझते हैं। बेटा बाप की आज्ञा क्यों माने? इस प्रकार प्राचीन आचार शास्त्र के बहुत से छोटे-मोटे नियम हैं जो आजकल भावी विकास में बाधक समझे जाते हैं। यूँ तो हर मानवी संस्था में समय-समय पर दोष आ जाया करते हैं और उनके सुधार की आवश्यकता होती है। यदि संसार के पिता हिरण्यकश्यप बन जाएँ तो ऐसी संस्थाएँ भी प्रशंसा की दृष्टि से देखी जायेंगी जो बालकों में प्रह्लाद की भावनाओं का प्रसार करें, क्योंकि परिवार का संगठन तो तभी सुरक्षित रह सकता है जब पिता और पुत्र दोनों धार्मिक हों। कोढ़ी माँ-बाप की सन्तान को उनसे अलग रखा जाता है कि वह कोढ़ दूसरी पीढ़ी में भी न आ जाए। चोर और डाकुओं की सन्तान के भी पृथक्करण की आवश्यकता होती है। परन्तु ये तो अपवाद मात्र हैं। यह साधारण जीवन का आचार शास्त्र नहीं, अपितु आचार सम्बन्धी अस्पतालों की नियमावली है, जो सामान्य जीवन से कुछ भिन्नता रखती है।

अच्छा! आइये पहले 'अनुव्रत' शब्द पर विचार करें। इसके लिए देखना यह है कि सृष्टिक्रम में सन्तानोत्पत्ति की व्यवस्था क्यों रखी गई? यदि कोई परिवार सन्तानहीन ही लुप्त हो जाए तो क्या हानि है? और यदि एक क्षण में समस्त संसार नष्ट हो जाए तो किसका क्या बिगड़े? परन्तु ये प्रश्न वही कर सकते हैं जो जीव की स्वतन्त्र सत्ता और उसकी आवश्यकताओं पर विचार नहीं करते। परमात्मा ने यह सृष्टि खेल के लिए नहीं बनाई। यह जीव के विकास के लिए बनाई गई है। दुर्गुणों से बचने और सद्गुणों को ग्रहण करने के लिए बनाई गई है। पशु-पक्षियों की बुद्धि इतनी कम है कि उनके आचार की व्यवस्था ईश्वर ने सीधी अपने हाथ में रखी है। जैसे बहुत छोटे बालकों पर बुद्धिमान् पिता उनकी व्यवस्था का भार नहीं छोड़ता, परन्तु विद्वान् और परिपक्व सन्तान अपना विधान आप बनाने में स्वतन्त्र होती है। यही प्रथा पशु-पक्षियों की है। मधुमक्खी को छत्ता बनाने या बया को घोंसला बनाने के लिए किसी इंजीनियरिंग कॉलेज की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु मनुष्य का बच्चा तो मुँह धोने का नियम भी सीखता है। अतः स्पष्ट है कि मानवजाति के लिए एक आचार शास्त्र चाहिए जो परम्परा से चालू रहे। इसी का नाम व्रत है। अब यज्ञोपवीत दिया जाता है तो एक मन्त्र पढ़ते हैं –

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ यजुर्वेद 1.5॥

अर्थात् मैं एक व्रत करता हूँ। परमात्मा इस व्रत के पालन में मेरी सहायता करें वह व्रत क्या है? अनृतात् सत्यमुपैमि। असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण। वेदों के पुनरूद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसीलिए इस व्रत (सत्य) को विशेष स्थान दिया है। इस नियम पर प्रत्येक मनुष्य के विकास का आधार है। महात्मा गाँधी का समस्त जीवन सत्य की खोज और उसके पालन में व्यतीत हुआ। जिसने सत्य की खोज नहीं की वह सत्य का पालन क्या करेगा? जो लोग 'श्रद्धा' का अर्थ लेते हैं – 'सत्य की खोज से संकोच और प्रचलित प्रथाओं या गुरुजनों पर अन्धविश्वास', वे श्रद्धा शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थों से अनभिज्ञ हैं। 'श्रद्धा' दो शब्दों से बनता है, 'श्रत्' अर्थात् सत्य और 'धा' अर्थात् धारण करना। अतः श्रद्धा का भी वही अर्थ है जो अनृतात् सत्यमुपैमि का। प्रत्येक बच्चे को यह व्रत लेना पड़ता है और यह आशा की जाती है कि आयुपर्यन्त इसका पालन करे। मानवजाति के कल्याण के लिए यह आवश्यक है और हर गृहस्थ को यह व्रत लेना चाहिए।

परन्तु यह परम्परा तो तभी चल सकती है, जब भावी सन्तान पूर्वजों के व्रत का आदर करे। इसीलिए कहा कि पुत्र को पिता का 'अनुव्रत' होना चाहिए। यह दायभाग में सबसे बड़ी सम्पत्ति है, जो कोई पिता अपने पुत्र के लिए या कोई आचार्य अपने शिष्य के लिए छोड़ सकता है। 'अनुव्रत' का प्रश्न तो तभी उठेगा जब 'व्रत' होगा। माता-पिता के जो आचरण आकस्मिक या स्वाभाविक रूप से इस 'व्रत' के अन्तर्गत नही वे अनुपालनीय भी नहीं। इसीलिए गुरु उपदेश देता है कि हमारे जो-जो सुचरित हैं वे ही पालनीय हैं (नो इतराणि) अन्य नहीं। व्यक्तिगत घटनाएँ नहीं अपितु वैदिक संस्कृति ही प्रत्येक माता-पिता को करणीय और प्रत्येक पुत्र या पुत्री को अनुकरणीय है।

अब 'पुत्र' शब्द के अर्थों पर विचार कीजिए। हर बच्चा जो उत्पन्न होता है पुत्र कहलाने के योग्य नहीं। शास्त्र के विधान से उसको 'पुत्र' बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। सन्तान के लिए संस्कृत में अनेक पर्याय हैं जैसे – तुक्, तोकं, तनयः, तोक्म्, तक्म, शेषः, अप्नः, गयः, जाः, अपत्यं, यहुः, सूनुः, नपात्, प्रजा, बीजम् इति पंचदश अपत्यनामानि (निघण्टु 2-2)। परन्तु पुत्र का एक विशेष अर्थ है। यास्काचार्य ने निरूक्त में पुत्र शब्द की यह व्युत्पत्ति दी है 'पुत्+त्र'। पुत् नाम है नरक का। नरक से जो रक्षा करे उसे पुत्र कहते हैं। मनुस्मृति में भी यही कहा है – **पुंनाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥ पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते। दौहित्रोपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत्॥** (मनुस्मृति 9.138, 139)

'पुत्' अर्थात् नरक से जो तारे वह है पुत्र। पुत्र के अन्तर्गत लड़के और लड़की तो आते ही हैं, इनके लड़के-लड़कियाँ भी आते हैं, क्योंकि वे सब ही नरक से तारने वाले हैं।

यह नरक त्राण क्या है, इस पर विचार करना चाहिए। पौराणिकों ने नरक को एक स्थान विशेष माना है जहां पापी लोग जाते हैं और यदि पुत्र मृतकों का श्राद्धतर्पण करता है तो उसके पितृगण नरक से छूटकर स्वर्ग में चले जाते हैं। यह बात वैदिक कर्मफलवाद के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। फिर प्रश्न है कि पुत्र पिता को नरक से कैसे छुड़ाता है?

कोई मनुष्य एक जन्म में पूर्ण विकास या परमपद को प्राप्त नहीं हो सकता इसके लिए जन्म-जन्मान्तर का अभ्यास आवश्यक है। यह पुनर्जन्म के द्वारा होता है। जो आज बाप कहलाता है वह कल बेटा होगा। जिसको अगली पीढ़ी कहते हैं वह पिछली पीढ़ी हो जायेगी। और अगली पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा का भार उसी पीढ़ी पर होगा। आज मैं और मेरे समवयस्क पितृश्रेणी में हैं। उनके ऊपर सन्तान की शिक्षा का भार है। कल हम मरकर बच्चे होंगे और जिनको हम पुत्र-पौत्र कहते हैं, वे पितृगण कहलायेंगे और हमारी शिक्षा का भार उन पर होगा। यह पिता-पुत्र का सम्बन्ध अनादि काल से प्रवाह चक्र के समान चला आता है। यदि हमारी सन्तान ने हमारी सुरक्षित संस्कृति को अपने हाथ में लेकर उसे समुन्नत किया तो वह समुन्नत संस्कृति हमारे दूसरेजन्म में हमारी सहायक होगी और इस प्रकार हमारे वर्तमान पुत्र अपने सुकर्मों के द्वारा हमारे कर्म और विकास के लिए उत्कृष्ट क्षेत्र छोड़ सकेंगे। इसी का नाम है नरकत्राण या पुत् नामक नरक से रक्षा। प्रत्येक अतीत पीढ़ी के जीवात्मा अगले जन्म में भावी बन जाते हैं और उनको अपनी पिछली पीढ़ी वालों के निर्मित क्षेत्र की अपेक्षा और आकांक्षा होती है।

एक दृष्टान्त लीजिए। आज हमारे पुत्रों ने अपनी योग्यता से देश-देशान्तरों में वैदिक भाषा, वैदिक परम्पराओं और वैदिक संस्कृति का प्रचार कर दिया। जब हमने दूसरा जन्म लिया तो ये परम्पराएँ उस जन्म में हमारी सहायक होंगी। यदि हमारी सन्तान की भूलों से वैदिक परमपराएँ नष्ट हो गई तो हम ऐसी दुनिया में जन्म लेंगे जो अवैदिक और प्रतिकूल होंगी, अतः हमें बड़ी कठिनाई होगी। यही नरक है।

कल्पना कीजिए कि आप एक बाग लगाते हैं और उसका निरीक्षण अपने लड़कों पर छोड़कर चार वर्ष के लिए विदेश चले जाते हैं। अब यदि आपके लड़के योग्य हैं तो बाग को समुन्नत करेंगे और जब आप विदेश से लौटेंगे तो बाग अच्छा मिलेगा। परन्तु यदि सन्तान ने प्रमाद किया और बाग उजड़ गया तो आपको नये सिरे से काम करना पड़ेगा। यही स्वर्ग और नरक है और यह आपके विकास में साधक या बाधक है। महर्षि स्वामी दयानन्द से पूर्व की सैकड़ों पीढ़ियों के लोग यदि यह समझते कि अपने पूर्वजों के नरक त्राण की दृष्टि से वैदिक धर्म का लोप न होने दें, तो महर्षि दयानन्द को फिर से वैदिक धर्म का जीर्णोद्धार करने का कष्ट न उठाना पड़ता और उनका जीवन आरम्भिक कक्षा की शिक्षा देने के स्थान में उच्च कक्षा की शिक्षा देने में काम आता। कल्पना कीजिए कि मैं मरकर अरब में पुनर्जन्म लूँ तो वहाँ अवैदिक इस्लाम का प्रचार पाऊँगा और अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के प्राबल्य के आधार पर यदि वैदिक जीवन व्यतीत करना चाहूँ तो कितनी कठिनाई होगी। परन्तु यदि इस पीढ़ी में वहाँ वैदिकधर्म का प्रचार हो जाए तो मुझे कितनी सुविधा हो! वैदिक संस्कृति में पले हुए वैदिकव्रतों के व्रती पिताओं के पुत्रों का कर्त्तव्य है कि अपने पितृगण के भावी क्षेत्र को अनुकूल बनाने के लिए पिताओं के अनुव्रत हों। इस प्रकार वे अपने और अपने पीछे आने वालों के लिए क्षेत्र तैयार कर सकेंगे। व्यक्ति तो मर चुकते हैं परन्तु संस्कृतियाँ बनी रहती हैं। कुलों की सन्तति, राज्यों की सन्तति और धन-सम्पत्ति को स्थिर या चिरस्थायी बनाने के हेतु हम सन्तान चाहते हैं। संस्कृति की सन्तति मुख्य चीज है। वही साध्य है और सन्तान उस सन्तति का साधन है।

अब कहा कि पुत्र को 'मात्रा संमनाः' माता के साथ समान मन वाला होना चहिए। माता प्रेम की निधि है। माता से अधिक प्रेम तो कोई करता ही नहीं और प्रेम एक प्रकार का गोंद है जिससे अनैक्य में ऐक्य उत्पन्न होता है, स्वार्थ में परमार्थ आता है, दानवता में मानवता का संचार होता है। अतः अपने मानसिक विकास का सबसे बड़ा साधन है माता के स्नेह को स्मरण रखना। माता का कृतज्ञ होना ही मनुष्य के आत्म-निर्माण की पहली सीढ़ी है।

मन्त्र के पिछले चरण में पत्नी के लिए उपदेश है कि पति के साथ मीठी और शान्तिप्रद वाणी बोले। पुरुष स्वभाव से कुछ कर्कश होता है और स्त्री का स्वभाव कोमल होता है। पुरुष दांत है तो स्त्री जीभ है। जीभ और दांत का सामीप्य है। कर्कशता और कोमलता का सम्मिलन है। समस्त शरीर में जहाँ नर्म पेशियाँ हैं वहाँ कठोर अस्थियाँ भी हैं। यदि हड्डियाँ ही होती, मांस नहीं होता तो शरीर का व्यापार कैसे चलता? शरीर शरीर न होता, पत्थर की चट्टान होता और यदि पेशियाँ ही होती तो यह ढाँचा ही न होता, हम चल-फिर न पाते। अतः कठोर वस्तुओं को अपना धर्म पालने के लिए कोमल वस्तुओं के सामीप्य, सान्निध्य और साहाय्य की आवश्यकता है। मशीन को चालू रखने के लिए तेल की आवश्यकता होती है। गृहस्थ के जटिल जीवन में पत्नी अपनी मधुरवाणी से कर्कशता को कोमल बनाए रखती है। जब पति बाहर के व्यापार से थका-मांदा झुझलाया हुआ सायंकाल को घर लौटता है तो पत्नी अपनी मधुर स्वागतकारिणी वाणी से सारी थकावट दूर कर देती है। पत्नी वस्तुतः पत्नी अर्थात् पति की रक्षिका बन जाती है। यह आनन्द केवल वैवाहिक जीवन में ही प्राप्त हो सकता है, अन्यत्र नहीं। इसीलिए पत्नी को 'जाया' कहा। न केवल इसलिए कि उससे पुत्र उत्पन्न होगा जो उसके कुल और नाम को स्थिर रखेगा, यह तो गृहस्थ का एक स्थूल पक्ष है। परन्तु इसलिए भी कि पत्नी की मीठी बोली पति के लिए प्रतिदिन नये जीवन का संचार करती है। विवाह संस्कार के समय इसी बात को दृष्टि में रखकर ऋग्वेद के इन मन्त्रों का विनियोग रखा गया है।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

मधुमान् नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ (ऋग्वेद 1.90.6,7,8)

सोशल मीडिया के माध्यम से स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ें

आर्य युवा सन्यासी व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ने के लिए इस लिंक पर क्लिक करें
www-facebook-com/SwamiAryavesh व फेसबुक पेज को लाइक करें व अन्य मित्रों को भी प्रेरित करें।
ई-मेल : aryavesh@gmail.com
Tel. :-011-23274771

प्रतिष्ठा में :–

अवितरण की दशा में लौटाएँ –
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

वेदों में सदाचार

– डॉ. सविता सचदेवा

वेद भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। यह मानव जाति के लिए अद्वितीय मार्गदर्शक एवं सर्वोत्कृष्ट आचार संहिता हैं। मनुष्य को सफल एवं सुन्दर जीवन जीने की कला भी वेदों से ही मिलती हैं। वैदिक संस्कृति का मूल चारित्रिक श्रेष्ठता हैं, चारित्रिक श्रेष्ठता का आधार सदाचार है। सदाचार का अर्थ है – अच्छा आचरण अच्छा व्यवहार। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बनता है, मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही वह आचरण करता है। क्योंकि विचारों से ही आचरण बनता है, जिसे चरित्र कहते हैं, चरित्र ही विचारों का दूसरा नाम है। सद्व्यवहार को हम मानसिक, वाचिक और शारीरिक तीन प्रकार से बांट सकते हैं। वेदों में मन में शुद्ध संकल्प एवं पवित्र भावनाओं के उदय के लिए प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि निपुण सारथी जैसे रास द्वारा घोड़ों को चलने के लिए बार-बार प्रेरित करता है और नियन्त्रित करता है वैसे ही मनुष्यों को अच्छे कार्यों में प्रेरित करने वाला मेरा जो मन है वह शुद्ध तथा पवित्र संकल्प वाला हो।' ऋग्वेद में भी भगवान् से मन को कल्याण मार्ग पर चलने की प्रार्थना की गई है। मन नियन्त्रण से जीवन में संयम, मर्यादा आदि सद्गुणों की उत्पत्ति होती है। अथर्ववेद में भी सर्वकल्याण की भावना दर्शायी गई है।

ज्ञान प्राप्ति के साधन आंख, कान, नाक, रसना और त्वचा प्रमुख हैं। वेद में इन सब इन्द्रियों को पवित्र रखने की ईश्वर से प्रार्थना की गई है।

यदि मन को बुरे विचारों से हटाना है तो उसके स्थान पर अच्छे विचारों को स्थापित करना होगा यदि ऐसा न किया गया तो बुरे विचार मनुष्य पर हावी हो जायेंगे। इसीलिए वेद भक्त कहता है कि मुझे तो अवकाश ही नहीं कि मैं पाप का चिन्तन कर सकूं। सुन्दर विचार मन में आने से स्वार्थ, दुराचार, लोभ, मद-मत्सर क्रोध आदि आसुरी वृत्तियाँ उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार सुवर्ण का मैल अग्नि के सम्पर्क से जलकर भस्म हो जाता है।

सद्वृत्त में दूसरा मानवता का लक्षण वाक्-संयम है। वाणी की उत्कृष्टता एवं निकृष्टता से ही व्यक्ति पहचाना जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में तीन प्रकार के तप गिनाये हैं – शारीरिक, वाचिक और मानसिक। उद्वेग न उत्पन्न करने वाला प्रिय हितकारक और सत्यवचन बोलना, स्वाध्याय वाणी का तप कहलाता है। वाणी गुण हैं मधुर बोलना, प्रेमपूर्वक, सत्य और सोच समझकर बोलना। वेदों में मधुर और हितकर वचनों की महत्ता को दर्शाया गया है। ऋग्वेद में कहा है जिस प्रकार छलनी से छानकर सत्तू को साफ करते हैं वैसे ही जो लोग मन, बुद्धि अथवा ज्ञान की छलनी में छानकर वाणी का मधुर प्रयोग करते हैं वे हित की बातों को समझते हैं। जो लोग बुद्धि से शुद्धकर वचन बोलते हैं वे अपने हित को भी तथा जिसको बात बता रहे हैं उसके हित को भी समझते हैं।

मधुरता से कही गई बात हर प्रकार से कल्याणकारी होती है परन्तु वही बात अगर कठोर और कटु शब्दों से बोली जाये तो एक बड़े अनर्थ का कारण बन जाती है। मनु ने वाणी के कटुवचन, झूठ चुगली एवं असम्बद्ध प्रलाप चार दोषों को गिनाया है। वेदों में कहा गया है कि मनुष्य को इन चार दोषों से सदैव दूर रहना चाहिए। और मधुर वचन बोलने चाहिए। अथर्ववेद में कहा है मेरी जिह्वा के सिरे पर मधुर रस होवे, जिह्वा के मूल में मधुर रस होवे, मेरे कर्म और बुद्धि में भी अवश्य तूँ रह, माधुर्य मेरे चित्त में पहुँचे। मेरा आना-जाना मधुर हो, मैं सदा मीठी वाणी बोलूं और मैं मधुर रूप वाला रहूँ।

यजुर्वेद में भी वाणी को कामधेनु कहा है जो हमारी सारी इच्छाओं को पूर्ण करती है। वाणी ही भावों और विचारों को प्रकट करने का अद्वितीय साधन है और वाणी द्वारा ही भावों और विचारों का विसर्जन किया जाता है।

मधुरता से कही गई बात हर प्रकार से कल्याणकारी होती है परन्तु वही बात अगर कठोर और कटु शब्दों से बोली जाये तो एक बड़े अनर्थ का कारण बन जाती है। मनु ने वाणी के कटुवचन, झूठ चुगली एवं असम्बद्ध प्रलाप चार दोषों को गिनाया है। वेदों में कहा गया है कि मनुष्य को इन चार दोषों से सदैव दूर रहना चाहिए। और मधुर वचन बोलने चाहिए। अथर्ववेद में कहा है मेरी जिह्वा के सिरे पर मधुर रस होवे, जिह्वा के मूल में मधुर रस होवे, मेरे कर्म और बुद्धि में भी अवश्य तूँ रह, माधुर्य मेरे चित्त में पहुँचे। मेरा आना-जाना मधुर हो, मैं सदा मीठी वाणी बोलूं और मैं मधुर रूप वाला रहूँ।

वाणी विचार दान करने वाली है। वाणी द्वारा मनुष्यों को मधुर और शालीन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। सत्य वाणी का आभूषण है सत्य-भाषण से ही समाज में मनुष्य का सम्मान बढ़ता है। यजुर्वेद में प्रजापति ब्रह्मा द्वारा सत्य को स्वीकारा गया है, सत्य में ही श्रद्धा को स्थापित किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में सत्य बोलने पर बल दिया है। असत्य से सत्य की ओर चलना चाहिए। सत्य अर्थात् जो सदा है, सतत है, निरन्तर है।

वाणी के संयम के पश्चात् शरीर का स्थान है। शरीर का तप है सत्य का आचरण। अहिंसा, अद्वेष, शारीरिक श्रम, दूसरों की सेवा करना, चोरी न करना। वेदों में केवल मानव का मानव के प्रति सद्व्यवहार या आचरण का ही उपदेश नहीं है, अपितु प्राणी के प्रति प्रेमपूर्वक एवं अहिंसक व्यवहार का उपदेश भी है। वैदिक संस्कृति सदाचार को जितना महत्त्व देती है उतना अन्य उपादानों को नहीं। वेद का कथन है कि दुराचारी व्यक्ति ऋतु के मार्ग को पार नहीं कर सकता। देवयान मार्ग सदाचारी व्यक्ति के लिए है। अतएव साधक प्रार्थना करता है। हे अग्ने! मुझे दुश्चरित से पृथक करो और सब ओर से सदाचार का भागी बनाओ।

अथर्ववेद में सद्व्यवहार को सत्याश्रित कहा गया है। सत्य में ही तप का वास है, सत्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जो बाहर से प्राप्त हो। सत्य एक प्रतीति है अनुभूति है जो आचरण के माध्यम से स्वयं में जागृत की जा सकती है। अतः सत्य ही भूमि का आधार है। भूमिसूक्त में भी पृथ्वी को धारण करने वाले पदार्थों में सर्वप्रथम सत्य का ही परिगणन किया गया है।

सत्य का अन्वेषक ही अहिंसा का प्रेमी होता है। वेद ने जहां मनुष्य समाज को अहिंसापूर्वक रहने की प्रेरणा दी है वहां तीन परिस्थितियों में हिंसा का विधान भी किया है। वह है बाह्य आक्रमण, असमाजिक तत्वों का दमन और भयंकर विषैले जन्तुओं का नाश। अथर्ववेद में प्रार्थना की गई है, कि हे इन्द्र हमारे बाह्य शत्रुओं को मार डाल और सेना लेकर चढ़ाई करने वालों को नीचे रोक दें और जो लाभदायक जीव जन्तु हैं वेद उन्हें पालने की शिक्षा देता है। मन से किसी का अहित चिन्तन न करना, वाणी से किसी को दुःखी न करना और शरीर से किसी को पीड़ा न पहुँचाना यही अहिंसा कहलाती है। वेद ने कहा है कि हम दानी, अहिंसक और ज्ञानी व्यक्ति का संग करें।

अहिंसा के साथ-साथ वेद ने यह भी कहा है कि मनुष्य के मन में द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिए। अथर्ववेद में कहा है कि सभी एक मन से रहें परस्पर द्वेष न करें। एक दूसरे से ऐसे प्रेम करें जैसे नवप्रसूता गाय अपने बछड़े से दुलार करती है।

वेद ने ईश्वर को पिता धरती को माता और धरती के सारे मनुष्यों को एक परिवार मानकर सबको प्रेमपूर्वक रहने की प्रेरणा दी है। प्रेम ईश्वर से समन्वय करवाता है। प्रेम एक ऐसी अग्नि है जिससे ईर्ष्या, घृणा और वैमनस्य सब जलकर राख हो जाते हैं। प्रेम का प्रथम रूप ईश्वर-प्रेम के रूप में हमारे सम्मुख आता है। वेद ने कहा है कि हम ईश्वर से प्रेम करें। और सबसे मित्रता का भाव रखें। अथर्ववेद में कहा है कि आपसी सहयोग, प्रेम और मधुर शब्दों के साथ लोगों से व्यवहार करने वाला व्यक्ति ही भ्रातृत्व-प्रेम को स्थापित कर सकता है।

अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। चोरी की भावना मनुष्य के बहुत बड़े पतन का कारण होती है। चोरी मनुष्य तभी करता है जब वह परिश्रम किये बगैर पदार्थों की प्राप्ति की लालसा करता है या वह बेरोजगार हो और उसकी इच्छा की पूर्ति न हो। ऋग्वेद में इस बात पर बल दिया है कि मनुष्य को परिश्रम करना चाहिए और चोरों को दण्ड दें तथा शिक्षा दें और उनमें से चोरी की भावना दूर करनी चाहिए। वेद में आदेश दिया गया है कि मनुष्य को अपनी कमाई खानी चाहिए दूसरों की कमाई खाना ऋणी होना है –

'स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा ते अन्येन न सन्नशे।'

योगीराज पतञ्जलि ने भी कहा है – अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सब रत्न अर्थात् उत्तम से उत्तम पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

अतः वेद ईश्वर की वह वाणी है जिसके बताये गये मार्ग पर चलकर हम आत्मोन्नति के पथ पर चल सकते हैं और अपना जीवन सफल कर सकते हैं।

– सरकारी कालेज स्त्रियाँ, अमृतसर

प्रो० विट्ठलराव आर्य, सभा मंत्री, प्रकाशक व मुद्रक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान/आसफ अली रोड), नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित तथा ज्योति प्रिंटिंग प्रेस, ई-94, सैक्टर-6, नोएडा-201301 से प्रकाशित एवं मुद्रित। (फोन : 011-23274771, 23260985 टेलीफैक्स : 23274216)
सम्पादक : प्रो० विट्ठलराव आर्य (सभा मन्त्री) मो.:0-9849560691, 0-9013251500 ई-मेल : sarvadeshik@yahoo.co.in, sarvadeshikarya@gmail.com वैबसाइट : www.vedicaryasamaj.com
वैदिक सार्वदेशिक साप्ताहिक में छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सैद्धान्तिक मतैक्यता होना अनिवार्य नहीं है।